साठवाँ अध्याय

पुनः तेजःप्राप्तिके लिये शिवकी तपश्चर्या, केदारतीर्थकी उपलब्धि, शिवका सरस्वतीमें निमग्न होना, मुरासुरका प्रसंग और सनत्कुमारका प्रसंग

नारद उवाच

क्व गतः शङ्करो ह्यासीद् येनाम्बा नन्दिना सह।
अन्धकं योधयामास एतन्मे वक्तुमर्हसि॥ १

पुलस्त्य उवाच

यदा वर्षसहस्त्रं तु महामोहे स्थितोऽभवत्।
तदाप्रभृति निस्तेजाः क्षीणवीर्यः प्रदृश्यते॥ २

स्वमात्मानं निरीक्ष्याथ निस्तेजोऽङ्गं महेश्वरः।
तपोऽर्थाय तथा चक्रे मतिं मतिमतां वरः॥ ३

स महाव्रतमुत्पाद्य समाश्वास्याम्बिकां विभुः।
शैलादिं स्थाप्य गोप्तारं विचचार महीतलम्॥ ४

महामुद्रार्पितग्रीवो महाहिकृतकुण्डलः।
धारयाणः कटीदेशे महाशङ्खस्य मेखलाम्॥ ५

कपालं दक्षिणे हस्ते सव्ये गृह्य कमण्डलुम्।
एकाहवासी वृक्षे हि शैलसानुनदीष्वटन्॥ ६

स्थानं त्रैलोक्यमास्थाय मूलाहारोऽम्बुभोजनः।
वाय्वाहारस्तदा तस्थौ नववर्षशतं क्रमात्॥ ७

ततो वीटां मुखे क्षिप्य निरुच्छ्वासोऽभवद् यतिः।
विस्तृते हिमवत्पृष्ठे रम्ये समशिलातले॥ ८

ततो वीटा विदार्यैव कपालं परमेष्ठिनः।
सार्चिष्मती जटामध्यान्निषण्णा धरणीतले॥ ९

वीटया तु पतन्त्याऽद्रिर्दारितः क्ष्मासमोऽभवत्।
जातस्तीर्थवरः पुण्यः केदार इति विश्रुतः॥ १०

ततो हरो वरं प्रादात् केदाराय वृषध्वजः।
पुण्यवृद्धिकरं ब्रह्मन् पापघ्नं मोक्षसाधनम्॥ ११

नारदने कहा (पूछा)—आप मुझे यह बतलायें कि शङ्कर कहाँ चले गये थे, जिससे नन्दिसहित अम्बिकाने अन्धकसे (स्वयं) युद्ध किया॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले—वे (शंकरजी) जिस समय एक हजार वर्षतक महामोहमें पड़ गये थे, उस समयसे वे तेजरहित एवं शक्तिहीन-से दिखायी दे रहे थे। मतिमानोंमें श्रेष्ठ महेश्वरने स्वयं अपने अङ्गोंको निस्तेज देखकर तप करनेके लिये निश्चय किया। उन व्यापक शङ्करने महाव्रतका निर्णय करनेके बाद अम्बिकाको धैर्य धारण कराया और वे शैल आदि (नन्दी)-को उनकी रक्षाके लिये नियुक्त कर पृथ्वीपर विचरण करने लगे। उन्होंने गलेमें तन्त्रानुसार महामुद्रा पहन ली। महासर्पोंके कुण्डल एवं कमरमें महाशङ्खकी मेखला धारण कर ली॥ २—५॥

दाहिने हाथमें कपाल एवं बायें हाथमें कमण्डलु लेकर वे वृक्षोंके नीचे (कभी) पड़े रहते, कभी पहाड़ोंकी चोटियोंपर तथा नदियोंके तटपर चक्कर लगाते रहते। प्रथम (आरम्भमें) मूल-फल खाकर फिर जल पीकर, उसके बाद वायु पीकर (यम-नियमका) व्रत पालन करनेवाले उन्होंने क्रमशः तीनों लोकोंमें नौ सौ वर्ष व्यतीत किये। उसके बाद उन्होंने हिमालयके ऊपर रमणीय तथा समतल पर्वतीय चट्टानपर आसन लगा लिया और अपने मुखमें काष्ठकी बनी गुल्ली डालकर श्वास रोक लिया—कुम्भक प्राणायाम कर लिया। उसके बाद शंकरके कपालको फोड़कर ज्वालामयी वह गुल्ली (उनकी) जटाके बीचसे निकलकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ६—९॥

उस गुल्लीके गिरनेसे पर्वत टूट-फूटकर पृथ्वीके समान (समतल) हो गया और वहाँ केदार नामका प्रसिद्ध तीर्थ बन गया। ब्रह्मन्! उसके बाद वृषध्वज महादेवने केदारको पुण्यकी वृद्धि करनेवाले एवं पापके विनाश करनेवाले और मोक्षके साधनका वर दिया तथा

ये जलं तावके तीर्थे पीत्वा संयमिनो नराः।
मधुमांसनिवृत्ता ये ब्रह्मचारिव्रते स्थिताः॥ १२

षण्मासाद् धारयिष्यन्ति निवृत्ताः परपाकतः।
तेषां हृत्पङ्कजेष्वेव मल्लिङ्गं भविता ध्रुवम्॥ १३
न चास्य पापाभिरतिर्भविष्यति कदाचन।
पितृणामक्षयं श्राद्धं भविष्यति न संशयः॥ १४

स्नानदानतपांसीह होमजप्यादिकाः क्रियाः।
भविष्यन्त्यक्षया नृणां मृतानामपुनर्भवः॥ १५

एतद् वरं हरात् तीर्थं प्राप्य पुष्णाति देवताः।
पुनाति पुंसां केदारस्त्रिनेत्रवचनं यथा॥ १६

केदाराय वरं दत्त्वा जगाम त्वरितो हरः।
स्नातुं भानुसुतां देवीं कालिन्दीं पापनाशिनीम्॥ १७
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जगामाथ सरस्वतीम्।
वृतां तीर्थशतैः पुण्यैः प्लक्षजां पापनाशिनीम्॥ १८

अवतीर्णस्ततः स्नातुं निमग्नश्च महाम्भसि।
द्रुपदां नाम गायत्रीं जजापान्तर्जले हरः॥ १९

निमग्ने शङ्करे देव्यां सरस्वत्यां कलिप्रिय।
साग्रः संवत्सरो जातो न चोन्मज्जत ईश्वरः॥ २०

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् भुवनाः सप्त सार्णवाः।
चेलुः पेतुर्धरण्यां च नक्षत्रास्तारकैः सह॥ २१
आसनेभ्यः प्रचलिता देवाः शक्रपुरोगमाः।
स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जपन्तः परमर्षयः॥ २२

ततः क्षुब्धेषु लोकेषु देवा ब्रह्माणमागमन्।
दृष्ट्वोचुः किमिदं लोकाः क्षुब्धाः संशयमागताः॥ २३

तानाह पद्मसम्भूतो नैतद् वेद्मि च कारणम्।
तदागच्छत वो युक्तं द्रष्टुं चक्रगदाधरम्॥ २४

पितामहेनैवमुक्ता देवाः शक्रपुरोगमाः।
पितामहं पुरस्कृत्य मुरारिसदनं गताः॥ २५

यह भी वर दिया कि जो संयमी मनुष्य परान्न-भोजनको त्यागकर तथा ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर तुम्हारा जल पीते हुए यहाँ छः महीनेतक निवास करेंगे उनके हृदयकमलमें निश्चय ही मेरे लिङ्गकी सत्ता प्रत्यक्ष प्रकट होगी॥ १०—१३॥

उन्हें कभी पापमें अभिरुचि नहीं होगी तथा उनसे किया गया पितरोंका श्राद्ध अक्षय होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। मनुष्योंद्वारा यहाँ की गयी स्नान, दान, तपस्या, होम एवं जप आदिकी क्रियाएँ अक्षय होंगी तथा इस स्थानपर मनुष्योंके मरनेपर उनका पुनर्जन्म नहीं होगा। महादेवसे इस प्रकारका वर पाकर वह केदारतीर्थ त्रिनेत्र महादेवके वचनके अनुकूल प्राणिवर्गको पवित्र एवं देवताओंका पोषण करने लगा। केदारतीर्थको वर देकर महादेव पापविनाशिनी रवितनया देवी कालिन्दी (यमुना)-में स्नान करनेके लिये शीघ्र चले गये॥ १४—१७॥

वहाँ स्नान करके पवित्र होकर भगवान् शंकर सैकड़ों पवित्र तीर्थोंसे घिरी (वृत) और प्लक्षवृक्षसे उत्पन्न पापनाशिनी सरस्वतीके निकट गये। उसके बाद वे स्नान करनेके लिये उसमें उतरे एवं अगाध जलमें भलीभाँति स्नान कर द्रुपदा गायत्रीका जप करने लगे। कलिप्रिय! देवी सरस्वतीके जलमें शङ्करको डुबकी लगाये हुए एक वर्षसे अधिक बीत गया; परंतु भगवान् ऊपर नहीं उठे। ब्रह्मन्! उस समय समुद्रोंसहित सातों भुवन काँपने लगे और ताराओंके साथ नक्षत्र (टूट-टूटकर) भूतलपर गिरने लगे॥ १८—२१॥

इन्द्र प्रमुख हैं जिनमें, ऐसे देवता अपने-अपने आसनोंसे उचक पड़े और महर्षिगण 'संसारका कल्याण हो'—इस भावनासे जप करने लगे। तत्पश्चात् जगत्के अशान्त हो जानेपर देवगण ब्रह्माके निकट आये और उन्हें देखकर उन लोगोंने पूछा—ब्रह्मन्! संसार अशान्त होकर क्यों सन्देहके झोंके खा रहा है? कमलयोनि ब्रह्माने उनसे कहा—मैं इसके कारणको नहीं जान पा रहा हूँ। तुमलोग जाओ, (इसके लिये) चक्र-गदाधारी विष्णुका दर्शन करना उचित है। पितामहके इस प्रकार कहनेपर इन्द्र आदि सभी देवता पितामहको आगे कर मुरारिलोक (विष्णुलोक)-में गये॥ २२—२५॥

नारद उवाच

कोऽसौ मुरारिर्देवर्षे देवो यक्षो नु किन्नरः।
दैत्यो राक्षसो वापि पार्थिवो वा तदुच्यताम्॥ २६

पुलस्त्य उवाच

योऽसौ रजः सत्त्वमयो गुणवांश्च तमोमयः।
निर्गुणः सर्वगो व्यापी मुरारिर्मधुसूदनः॥ २७

नारद उवाच

योऽसौ मुर इति ख्यातः कस्य पुत्रः स गीयते।
कथं च निहतः संख्ये विष्णुना तद् वदस्व मे॥ २८

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि मुरासुरनिबर्हणम्।
विचित्रमिदमाख्यानं पुण्यं पापप्रणाशनम्॥ २९
कश्यपस्यौरसः पुत्रो मुरो नाम दनूद्भवः।
स ददर्श रणे शस्तान् दितिपुत्रान् सुरोत्तमैः॥ ३०
ततः स मरणाद् भीतस्तप्त्वा वर्षगणान्बहून्।
आराधयामास विभुं ब्रह्माणमपराजितम्॥ ३१
ततोऽस्य तुष्टो वरदः प्राह वत्स वरं वृणु।
स च वव्रे वरं दैत्यो वरमेनं पितामहात्॥ ३२
यं यं करतलेनाहं स्पृशेयं समरे विभो।
स स मद्धस्तसंस्पृष्टस्त्वमरोऽपि मरत्वतः॥ ३३

बाढमित्याह भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
ततोऽभ्यागान्महातेजा मुरः सुरगिरिं बली॥ ३४

समेत्याह्वयते देवं यक्षं किन्नरमेव वा।
न कश्चिद् युयुधे तेन समं दैत्येन नारद॥ ३५

ततोऽमरावतीं क्रुद्धः स गत्वा शक्रमाह्वयत्।
न चास्य सह योद्धुं वै मतिं चक्रे पुरंदरः॥ ३६
ततः स करमुद्यम्य प्रविवेशामरावतीम्।
प्रविशन्तं न तं कश्चिन्निवारयितुमुत्सहेत्॥ ३७

स गत्वा शक्रसदनं प्रोवाचेन्द्रं मुरस्तदा।
देहि युद्धं सहस्राक्ष नो चेत् स्वर्गं परित्यज॥ ३८

इत्येवमुक्तो मुरुणा ब्रह्मन् हरिहयस्तदा।
स्वर्गराज्यं परित्यज्य भूचरः समजायत॥ ३९

नारदने पूछा—देवर्षे! आप यह बतलायें कि ये मुरारि कौन हैं? ये देवता हैं या यक्ष, किन्नर हैं या दैत्य, राक्षस हैं या मनुष्य?॥ २६॥

पुलस्त्यजीने कहा—देवताओ! जो ये मुरारि हैं वे मधु नामके राक्षसके विनाशकारी हैं; वे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे युक्त हैं; निर्गुण और सगुण हैं; सर्वगामी और सर्वव्यापी हैं॥ २७॥

नारदने (पुलस्त्यजीसे) **पूछा**—आप मुझे यह बतलायें कि यह मुर-नामधारी दानव किसका पुत्र है और लड़ाईके मैदानमें भगवान् विष्णुने उसे किस प्रकार मारा?॥ २८॥

पुलस्त्यजी बोले—नारद! मुर असुरके विनाशकी कथा अद्भुत है; वह पापका विनाश करनेवाली और पवित्रकारिणी है; मैं उसे कहूँगा; तुम सुनो। दनुकी कोखसे कश्यपका औरस पुत्र मुर उत्पन्न हुआ। उसने श्रेष्ठ देवोंद्वारा संग्राममें दैत्योंको पराजित देखा। उसके बाद मृत्युसे भयभीत होकर उसने बहुत वर्षोंतक तपस्या करते हुए व्यापक अजेय ब्रह्माकी आराधना की। उसके बाद उसके ऊपर संतुष्ट होकर ब्रह्माने कहा—वत्स! वर माँगो। उस दैत्यने पितामहसे यह श्रेष्ठ वर माँगा—॥ २९—३२॥

विभो! युद्धमें मैं जिसे हाथसे छू दूँ वह मेरे हाथसे छूते ही अमर (देवता) होनेपर भी मृत्युको प्राप्त हो जाय। लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने कहा—बहुत ठीक; ऐसा ही होगा। उसके बाद महातेजस्वी बलशाली मुर देवगिरिपर जा पहुँचा। [पुलस्त्यजी कहते हैं कि] नारदजी! वहाँ पहुँचकर उसने देवता, यक्ष, किन्नर आदिको युद्धके लिये ललकारा, किंतु किसीने भी उसके साथ युद्ध नहीं किया। उसके बाद क्रुद्ध होकर वह अमरावतीकी ओर चला गया और इन्द्रको संग्राम करनेके लिये ललकारने लगा। किंतु इन्द्रने भी उसके साथ युद्ध करनेका विचार नहीं किया॥ ३३—३६॥

उसके बाद हाथ उठाये हुए उसने अमरावतीमें प्रवेश किया। परंतु किसीने भी प्रवेश करते हुए उसको रोकनेका साहस नहीं किया। उसके बाद इन्द्रके भवनमें जाकर मुरने इन्द्रसे कहा—सहस्राक्ष! मुझसे संग्राम करो, अन्यथा स्वर्गको छोड़ दो। ब्रह्मन्! मुरके इस प्रकार कहनेपर इन्द्र (युद्ध न कर) स्वर्गका राज्य छोड़कर

ततो गजेन्द्रकुलिशौ हृतौ शक्रस्य शत्रुणा।
सकलत्रो महातेजाः सह देवैः सुतेन च॥ ४०

कालिन्द्या दक्षिणे कूले निवेश्य स्वपुरं स्थितः।
मुरुश्चापि महाभोगान् बुभुजे स्वर्गसंस्थितः॥ ४१

पृथ्वीपर विचरण करने लगे। उसके बाद (उस) शत्रुने इन्द्रके गजराज (ऐरावत) और वज्रको छीन लिया। महातेजस्वी इन्द्र अपनी पत्नी, पुत्र और देवताओंके साथ कालिन्दीके दक्षिण तटपर अपना नगर बसाकर रहने लगे और मुर स्वर्गमें रहते हुए महान् भोगोंका उपभोग करने लगा॥ ३७—४१॥

दानवाश्चापरे रौद्रा मयतारपुरोगमाः।
मुरमासाद्य मोदन्ते स्वर्गे सुकृतिनो यथा॥ ४२
स कदाचिन्महीपृष्ठं समायातो महासुरः।
एकाकी कुञ्जरारूढः सरयूं निम्नगां प्रति॥ ४३
स सरय्वास्तटे वीरं राजानं सूर्यवंशजम्।
ददृशे रघुनामानं दीक्षितं यज्ञकर्मणि॥ ४४
तमुपेत्याब्रवीद् दैत्यो युद्धं मे दीयतामिति।
नो चेन्निवर्ततां यज्ञो नेष्टव्या देवतास्त्वया॥ ४५

मय और तारक आदि दूसरे भयङ्कर दानव भी मुरके निकट पहुँचकर स्वर्गमें पुण्यात्माओंके समान आमोद-प्रमोद करने लगे। वह महान् असुर किसी समय पृथ्वीपर आया और अकेला ही हाथीपर चढ़कर सरयू नदीके तटपर उपस्थित हुआ। उसने सरयूके किनारे सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए एवं यज्ञकर्ममें दीक्षित रघु नामके राजाको देखा। उनके पास जाकर उस दैत्यने कहा—मुझसे संग्राम करो, नहीं तो यज्ञ करना बंद कर दो। तुम देवताओंकी पूजा नहीं कर सकते॥ ४२—४५॥

तमुपेत्य महातेजा मित्रावरुणसंभवः।
प्रोवाच बुद्धिमान् ब्रह्मन् वसिष्ठस्तपतां वरः॥ ४६
किं ते जितैर्नरैर्दैत्य अजिताननुशासय।
प्रहर्तुमिच्छसि यदि तं निवारय चान्तकम्॥ ४७
स बली शासनं तुभ्यं न करोति महासुर।
तस्मिञ्जिते हि विजितं सर्वं मन्यस्व भूतलम्॥ ४८
स तद् वसिष्ठवचनं निशम्य दनुपुङ्गवः।
जगाम धर्मराजानं विजेतुं दण्डपाणिनम्॥ ४९

ब्रह्मन्! मित्रावरुणके पुत्र महातेजस्वी, बुद्धिमान् और तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठने उस दैत्यके पास जाकर कहा—दैत्य! मनुष्योंको जीत लेनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? जो नहीं जीते गये हैं उनको पराजित करो। यदि तुम (चढ़ाई कर) प्रहार करना चाहते हो तो उन यमराजका अवरोध करो। महासुर! वे बलशाली हैं। तुम्हारा शासन नहीं मानते। उनको जीत लेनेपर समस्त भूतलको पराजित हुआ समझो। वसिष्ठका वह वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ दण्ड धारण करनेवाले धर्मराजको जीतनेके लिये चल पड़ा॥ ४६—४९॥

तमायान्तं यमः श्रुत्वा मत्वाऽवध्यं च संयुगे।
स समारुह्य महिषं केशवान्तिकमागमत्॥ ५०
समेत्य चाभिवाद्यैनं प्रोवाच मुरचेष्टितम्।
स चाह गच्छ मामद्य प्रेषयस्व महासुरम्॥ ५१
स वासुदेववचनं श्रुत्वाऽभ्यागात् त्वरान्वितः।
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यः सम्प्राप्तो नगरीं मुरः॥ ५२
तमागतं यमः प्राह किं मुरो कर्त्तुमिच्छसि।
वदस्व वचनं कर्त्ता त्वदीयं दानवेश्वर॥ ५३

उसे आता हुआ सुनकर तथा संग्राममें वह अवध्य है—ऐसा विचारकर वे यमराज महिषपर सवार होकर भगवान् केशवके पास चले गये। उनके पास जाकर प्रणाम करनेके पश्चात् (यमराजने) मुरके कृत्योंको बताया। उन्होंने कहा—तुम जाकर अभी उस महासुरको मेरे पास भेज दो। वासुदेवके वचनको सुनकर वे शीघ्र चले आये। इतनेमें मुर दैत्य उनकी नगरीमें आया। उसके आनेपर यमने कहा—हे मुर! बतलाओ तुम क्या करना चाहते हो? दानवेश्वर! मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा॥ ५०—५३॥

मुरुरुवाच

यम प्रजासंयमनान्निवृत्तिं कर्त्तुमर्हसि।
नो चेत् तवाद्य छित्त्वाऽहं मूर्धानं पातये भुवि॥ ५४

मुरु या मुरने कहा—यम! तुम प्रजाओंके ऊपर नियन्त्रण करना बंद कर दो, नहीं तो मैं तुम्हारा सिर

तमाह धर्मराड् ब्रह्मन् यदि मां संयमाद् भवान्।
गोपायति मुरो सत्यं करिष्ये वचनं तव॥ ५५

मुरस्तमाह भवतः कः संयन्ता वदस्व माम्।
अहमेनं पराजित्य वारयामि न संशयः॥ ५६

यमस्तं प्राह मां विष्णुर्देवश्चक्रगदाधरः।
श्वेतद्वीपनिवासी यः स मां संयमतेऽव्ययः॥ ५७
तमाह दैत्यशार्दूलः क्वासौ वसति दुर्जयः।
स्वयं तत्र गमिष्यामि तस्य संयमनोद्यतः॥ ५८

तमुवाच यमो गच्छ क्षीरोदं नाम सागरम्।
तत्रास्ते भगवान् विष्णुर्लोकनाथो जगन्मयः॥ ५९

मुरस्तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राह गच्छामि केशवम्।
किं तु त्वया न तावद्धि संयम्या धर्म मानवाः॥ ६०

स प्राह गच्छ त्वं तावत् प्रवर्तिष्ये जयं प्रति।
संयन्तुर्वा यथा स्याद्धि ततो युद्धं समाचर॥ ६१

इत्येवमुक्त्वा वचनं दुग्धाब्धिमगमन्मुरः।
यत्रास्ते शेषपर्यङ्के चतुर्मूर्तिर्जनार्दनः॥ ६२

नारद उवाच

चतुर्मूर्त्तिः कथं विष्णुरेक एव निगद्यते।
सर्वगत्वात् कथमपि अव्यक्तत्वाच्च तद्वद॥ ६३

पुलस्त्य उवाच

अव्यक्तः सर्वगोऽपीह एक एव महामुने।
चतुर्मूर्त्तिर्जगन्नाथो यथा ब्रह्मंस्तथा शृणु॥ ६४

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं शुक्लं शान्तं परं पदम्।
वासुदेवाख्यमव्यक्तं स्मृतं द्वादशपत्रकम्॥ ६५

नारद उवाच

कथं शुक्लं कथं शान्तमप्रतर्क्यमनिन्दितम्।
कान्यस्य द्वादशैवोक्ता पत्रका तानि मे वद॥ ६६

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व गुह्यं परमं परमेष्ठिप्रभाषितम्।
श्रुतं सनत्कुमारेण तेनाख्यातं च तन्मम॥ ६७

काटकर पृथ्वीपर फेंक दूँगा। ब्रह्मन्! धर्मराजने उससे कहा—यदि तुम मेरे ऊपर संयम करनेवालेसे मेरी रक्षा कर सको तो मैं सत्य कहता हूँ कि तुम्हारे वचनका पालन करूँगा। मुरने उनसे कहा—मुझे बतलाओ कि तुम्हारा संयन्ता (शासक) कौन है? मैं निस्सन्देह उसे पराजित कर रोक दूँगा। यमने उससे कहा—जो श्वेतद्वीपके निवासी, चक्र-गदा धारण करनेवाले, अविनाशी भगवान् विष्णु हैं, वे ही मुझे शासित करते हैं॥ ५४—५७॥

दैत्योंमें श्रेष्ठ मुरने यमराजसे कहा—यम! वह कहाँ रहता है, जिसे कठिनतासे जीता जा सकता है? उसका संयमन करनेके लिये मैं तैयार होकर वहाँ स्वयं जाऊँगा। यमराजने उससे कहा—तुम क्षीरसागरमें जाओ। वहाँ लोकस्वामी जगन्मूर्ति भगवान् विष्णु रहते हैं। मुरने उनकी बात सुनकर कहा—धर्मराज! मैं केशवके पास जा रहा हूँ, परंतु तुम तबतक मनुष्योंका नियमन मत करना। उस (मुर)-ने कहा—तुम जाओ। तबतक मैं तुम्हारे नियामकको जैसे भी हो जीतनेका प्रयत्न करूँगा। उसके बाद तुम युद्ध करना। इतना कहकर मुरु या मुर दैत्य क्षीरसागरमें जा पहुँचा। वहाँ (जाकर उसने देखा कि) चतुर्भुजाधारी जनार्दन अनन्त नागकी शय्यापर (पड़े हुए) हैं॥ ५८—६२॥

नारदजीने पूछा—आप (कृपया) यह बतलायें कि विष्णु एक होनेपर भी चतुर्मूर्ति क्यों कहे जाते हैं। क्या सर्वगत एवं अव्यक्त होनेके कारण तो नहीं कहा जाता? (आप) उसे कहें॥ ६३॥

पुलस्त्यजी बोले—ब्रह्मन्! अव्यक्त एवं सर्वव्यापी होनेपर भी वे एक ही हैं। जिस कारणसे जगन्नाथ चतुर्मूर्ति कहे जाते हैं, उसे बताता हूँ, सुनो। वासुदेव नामक श्रेष्ठ पद (तर्क या अनुमानद्वारा अज्ञेय) एवं निर्देश किये जानेमें अशक्य, शुक्ल (शुद्ध), शान्तियुक्त, अव्यक्त (अप्रकट) एवं द्वादशपत्रक (**'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—) द्वादशाक्षर मन्त्रवाला कहा गया है॥ ६४-६५॥

नारदजीने [पुनः] पूछा—किस प्रकार वे शुक्ल, शान्त, अप्रतर्क्य एवं अनिन्दित हैं? मुझे बतलाइये कि उनके कथित द्वादशपत्रक कौन हैं॥ ६६॥

पुलस्त्यजी बोले—पितामह ब्रह्माने जिस परम गुह्य वचनको कहा है, उसे सुनिये। सनत्कुमारने उसे सुना था और उन्होंने मुझसे कहा था॥ ६७॥

नारद उवाच

कोऽयं सनत्कुमारेति यस्योक्तं ब्रह्मणा स्वयम्।
तवापि तेन गदितं वद मामनुपूर्वशः॥ ६८

नारदजीने [फिर] **कहा**—इस विषयमें स्वयं ब्रह्माने जिनसे कहा है, वे सनत्कुमार कौन हैं? और उन्होंने भी आपसे जो कहा है उसे क्रमशः मुझसे कहें॥ ६८॥

पुलस्त्य उवाच

धर्मस्य भार्याहिंसाख्या तस्यां पुत्रचतुष्टयम्।
संजातं मुनिशार्दूल योगशास्त्रविचारकम्॥ ६९
ज्येष्ठः सनत्कुमारोऽभूद् द्वितीयश्च सनातनः।
तृतीयः सनको नाम चतुर्थश्च सनन्दनः॥ ७०
सांख्यवेत्तारमपरं कपिलं वोढुमासुरिम्।
दृष्ट्वा पञ्चशिखं श्रेष्ठं योगयुक्तं तपोनिधिम्॥ ७१
ज्ञानयोगं न ते दद्युर्ज्यायांसोऽपि कनीयसाम्।
मानमुक्तं महायोगं कपिलादीनुपासतः॥ ७२
सनत्कुमारश्चाभ्येत्य ब्रह्माणं कमलोद्भवम्।
अपृच्छद् योगविज्ञानं तमुवाच प्रजापतिः॥ ७३

पुलस्त्यजी बोले—धर्मकी पत्नी अहिंसा है। उससे चार पुत्र हुए। मुनिश्रेष्ठ! वे सभी योगशास्त्रके विचार करनेमें कुशल थे। उनमें सनत्कुमार ज्येष्ठ, सनातन द्वितीय, सनक तृतीय एवं चतुर्थ सनन्दन हुए। वे सभी सांख्यवेत्ता कपिल, वोढु, आसुरी एवं योगसे युक्त तपोनिधि श्रेष्ठ पञ्चशिख नामक (ऋषि)-को देखकर उनके पास गये। बड़े होनेपर भी उन लोगोंने अपनेसे छोटोंको ज्ञानयोगका उपदेश नहीं दिया। कपिल आदिकी उपासना करनेवालोंको महायोगका परिणाममात्र बतला दिया। सनत्कुमारने कमलोद्भव ब्रह्माके पास जाकर योग-विज्ञान पूछा। प्रजापतिने उनसे कहा॥ ६९—७३॥

ब्रह्मोवाच

कथयिष्यामि ते साध्य यदि पुत्रत्वमिच्छसि।
यस्य कस्य न वक्तव्यं तत्सत्यं नान्यथेति हि॥ ७४

ब्रह्माने कहा—साध्य! यदि तुम पुत्र होना चाहो तो मैं तुमसे कहूँगा। उसे जिस-किसीसे नहीं कहना चाहिये; क्योंकि यह सत्य है, अन्यथा नहीं है॥ ७४॥

सनत्कुमार उवाच

पुत्र एवास्मि देवेश यतः शिष्योऽस्म्यहं विभो।
न विशेषोऽस्ति पुत्रस्य शिष्यस्य च पितामह॥ ७५

सनत्कुमारने कहा—देवेश! मैं पुत्र ही हूँ; क्योंकि विभो! मैं शिष्य हूँ। पितामह! पुत्र और शिष्यमें कोई भेद नहीं होता॥ ७५॥

ब्रह्मोवाच

विशेषः शिष्यपुत्राभ्यां विद्यते धर्मनन्दन।
धर्मकर्मसमायोगे तथापि गदतः शृणु॥ ७६

पुन्नाम्नो नरकात् त्राति पुत्रस्तेनेह गीयते।
शेषपापहरः शिष्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥ ७७

ब्रह्माने कहा—धर्मनन्दन! शिष्य और पुत्रमें धर्म-कर्मके संयोगमें (जो) कुछ भेद होता है उसे बताता हूँ, मुझसे सुनो। यह वैदिकी श्रुति है—जो 'पुम्' नामक नरकसे उद्धार कर देता है उसे 'पुत्र' कहा जाता है और शेष पापोंका हरण करनेवाला होनेसे 'शिष्य' कहा जाता है (—यही दोनोंमें भेद है)॥ ७६-७७॥

सनत्कुमार उवाच

कोऽयं पुन्नामको देव नरकात् त्राति पुत्रकः।
कस्माच्छेषं ततः पापं हरेच्छिष्यश्च तद्वद॥ ७८

सनत्कुमारने कहा (पूछा)—देव! वह 'पुम्' नामक नरक कौन है? जिस नरकसे पुत्र रक्षा करता है और शिष्य किससे अवशिष्ट पापका हरण करता है; आप कृपया इन्हें बतलाइये॥ ७८॥

ब्रह्मोवाच

एतत् पुराणं परमं महर्षे
योगाङ्गयुक्तं च सदैव यच्च।
तथैव चोग्रं भयहारि मानवं
वदामि ते साध्य निशामयैनम्॥ ७९

ब्रह्माने कहा—महर्षे! मैं तुमको अत्यन्त प्राचीन, योगाङ्गसे युक्त, उग्र भय दूर करनेवाली परम पवित्र कथा सुनाता हूँ। हे साध्य! तुम इसे सुनो॥ ७९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें साठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६०॥